ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

KEY WORDS:

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में लोकभाषा का प्रयोग

चरत सिंह एम.ए. (हिन्दी) यू.जी.सी. नैट (हिन्दी)

हिन्दी आंचलिक उपन्यास की भाषा परिनिश्ठित हिन्दी या खड़ी बोली है, किन्तु जिन–जिन अंचलो पर वे उपन्यास लिखे गये हैं वे या तो हिन्दी की बोलियों के अंचल हैं या आधुनिक आर्य भाषा के अचल हैं। आंचलिकता की सिद्धि तथा स्वाभाविकता के लिए पात्रों को बोलचाल की खड़ी बोली के कलेवर में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा करते समय अनेक उपन्यासों में अनपेक्षित प्रयोग और अवांछित दुर्बाधता का आ जाना स्वाभाविक है। इस विषय में विस्तार सहित प्रकाश, इसी शोध प्रबन्ध के भाषा–विचार से संबंधित अध्याय में डाला गया है।

पात्रों में स्थानीय शब्दों–वाक्यों और लोकोक्तियों आदि का प्रयोग प्रायः किया गया है। इससे उनके सम्वादों में आंचलिक भाषा का पुट आ गया है। आंचलिक उपन्यासकार नागार्जुन ने अपनी उपन्यास रचना 'बलचनमा' में आंचलिक जीवन के यथार्थ की सजीव और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये स्वयं बलचनमा के मुख में जिस भाषा का प्रयोग कराया है उससे युग जीवन का सत्य और जीवन यथार्थ के बहुविधि चित्र आँखों के सामने स्वतः मूर्तिमन्त हो जाते हैं। बारह वर्ष की किशोर आयु में जमींदार के द्वारा भगवान की दुहाई देने पर उसके चिन्तन की यह अभिव्यक्ति – ''अच्छा तो भगवान करते ही हैं ? चार परानी का परिवार छोड़कर मेरा बाप मर गया। यह भी भगवान ने ठीक ही किया। भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर–चूर कर फांकती है, यह भी भगवान ठीक ही करते हैं और सरकार आप कनकजीर और तुलसी फूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, घी, दही, चटनी खाते हैं सो भी भगवान की ही लीला है। चौकोर कलमबाग के लिये आपको हमारा दो कट्ठा खेत चाहिए और हमें चाहिए अपने चौकोर पेट के लिये मुट्ठी भर दाना।'' इसी प्रकार 'बहती गंगा' में आंचलिकता की प्रभावान्विति के लिए बनारसी बोली का यथेष्ट पुट दिखलायी पड़ता है। नागर गुरु और लौटन बहेलिये के सम्वाद का यह अंश अर्थपूर्ण होने के साथ ही साथ प्रासंगिक भी है। नागर, लौटन बहेलिये से पूछता है – ''का हाल चाल हौ। ई कौन तमाशा बनउले हबुआ।'' ऐसे ही सुक्खू और सिंगर के वार्तालाप में बनारसी बोली की मधुरिमा इस प्रकार व्यंजित हुयी है – ''का भाई सुक्खू माल तैयार हो गएल। वह जवाब देता है – ''मसाला त कब्बे से तैय्यार हौ। देखीं तोहें साफा पानी से कब छुट्टी मिल–ला। हम्मे त तनिक देरी लगी भाई। अच्छा त तोहार हिस्सा रख के हम आपन पी जात हुई।'' परती परिकथा में अनेक आंचलिक पुट मिलते हैं यथा'' ···

''गौर में दीप जलाने से बाप कुल, स्वामी कुल दोनों कुल में ईजोत होता है। ···· अपनी दोनों बेटियों को गुन मारकर जगाया – अरी उठ गुनमन्ती जोगमन्ती दूनू बहिनिया।''

''ठीक पगला गया अब कि ! ठीक, ऐसे ही की हिन थे,··· आकि देखो टीकापट्टी के सूरतदास। गाँव का लगड़ा लुच्चा से लेकर भला पुराना लोग मने करते थक गये। कुछ नहीं बुझे बोले कि हम मन्दिल उन्दिल कुछ नहीं मानता है·····इस्पताल खोल दी हिन, डागडर बैठा दीहिन, मारे कन्टर के कन्टर दवा ला के ढेर दीहिन। आकि देखौ, ऐसा हुआ दी दी ई ई ––, कि एको रोगी नहीं बचा।''

''कि–ई, सज्जन दुरजन सब समतूल मैया सरोसती के दरबार में क्या तुलसी क्या रघुवा जैसा गाँव का गड़री का फूल। कि, उ, सांच–झूठ कछुओ न जानू, जो गुरु सपने में सिखा गये, सोहि अच्छर–अच्छर बखानू।·····मगर गुरु के हुकुम से सब कुछ माफ।''

इसी प्रकार नागार्जुन में भी अपनी आंचलिक कथाकृति 'बलचनमा' में उपन्यास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली एवं प्रतिनिधि चरित्र बलचनमा के मुख से उसके करुण जीवन की दुख दर्द भरी कहानी प्रस्तुत कराया है। ''उसके वर्णन में उसकी जनपदीय बोली का पर्याप्त पुट है उसके अंचल में बोले जाने वाले अधिकाधिक शब्दों का बलचनमा के द्वारा प्रयोग कराकर लेखक ने यर्थाथता की अनुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।··· ····भाषा की दृष्टि से यह एक नया प्रयोग है।

आंचलिक कथाकार 'रेणु' ने इसी प्रकार अपने उपन्यास 'परती परिकथा में आंचलिक शब्द प्रयोगों के द्वारा अंचल की लोक सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने का सफल प्रयास किया है। अंचल के स्थानीय शब्द प्रयोगों के द्वारा उस अंचल विशेष का जीवन यथार्थ अत्यन्त सजीवता के साथ रूपायित हुआ है। आँचलिक पात्रों ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें आँचलिकता का पुट पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। यथा ––

''सुन्दर नायक ! बड़ा भारी गुनियाँ। नेपाल में किरात मन्तर सीखकर आया हुआ गुनी ! और, भाई से बढ़कर गुनवन्ती, उसकी बहिनिया सुन्दरि नायका। काम रूप कामख्या से गुन सीखकर आयी हुई। उसको देव कुल का दुलहा चाहिए। मोरी बहिनिया सुन्दरी नैका ने किया है एक उपाय। दन्ताराकस को फुलसलाकर प्रेम की डोरी में बांधा है।·····भला, उसको राकस कुल में जाने दूँगा।·····पांच रात में पांच कुण्ड बनवायेगी पांच महापोखरों से पुरइन मंगवायेगी, पांच महानदियों की मछलियां।''

''आँख मिचौनी, लुकाचोरी, खेल में दन्ता गया हार। हार कबूल कर हँसता है दन्ता –ही–ही–ही–ही–ई–ह ! ··· ··सत्त करके बोला –– ठीक्के बात, ठीक्के बात ! कुण्डा सोधैया करदे–करबे, पानी से भरबे। तोर परपट परती धरती पर पानी कल बुल बोले – हे – हे – हे – ए ऐसा पानी भरबे।''

स्थानीय भाषा के शब्द प्रयोग और स्थानीय–भाषा की व्यंजना द्वारा खड़ी बोली के ढांचे में आंचलिकता को साकार करने की चेष्टा विभिन्न आंचलिक उपन्यासों में हुयी है। ये चेष्टाएं मूलतः दो प्रकार की हैं–

1. पात्रों के मुख से विशुद्ध रूप में स्थानीय बोली का प्रयोग।
2. पात्रों द्वारा स्थानीय शब्दों और स्थानीय वाक्य रचना प्रणाली का खड़ी बोली के ढाँचे में प्रयोग।

ये दोनों ही प्रकार के भाषा प्रयोग विशेष रूप से 'रेणु' के उपन्यासों में ही मिलते हैं।

'कब तक पुकारूँ', 'लोक–ऋण', 'आधा गांव' में भी खड़ी बोली के साथ स्थानीय शब्दों और वाक्य रचना प्रणाली का भरपूर प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रयोगों द्वारा प्रायः अपढ़ पात्रों की मानसिकता, योग्यता और क्षमता की अभिव्यक्ति हुयी है। स्त्री पात्र प्रायः आँचलिक शब्दों का पुट देकर बोलते हैं। इसी प्रकार निम्न मध्यम श्रेणी के गवार किसान तथा निरक्षर व्यक्ति भी दुरंगी भाषा सृष्टि करते हुए दिखायी पड़ते हैं। ऐसे प्रयोग लोक में अनजाने नहीं है और बहुधा किये जाते रहे हैं। किन्तु आग्रहपर्वक खड़ी बोली को आँचलिक भाषा के शब्दों और वाक्य गठन की प्रणाली से ग्रस्त कर देने पर भाषा में दुरुहता आ जाने का भय रहता है। साथ ही खड़ी बोली का परिनिष्ठित रूप भी बिगड़ जाता है। इसलिये साहित्यिक भाषा के रूप में ऐसे प्रयोग चाहे आँचलिकता की सिद्धि में कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, वांछित नहीं कहे जा सकते।

'रेणु' के उपन्यासों में तो ऐसे प्रयोगों की बहुतायत है। अंचल के लोक गीतों, वहाँ की कहावतों, प्रचलित उक्तियों आदि को खड़ी बोली के बीच जमाकर स्थानीय रंग उभारने का कौशल दिखाया गया है। कहीं–कहीं तो उनकी इतनी अधिकता है कि स्थानीय बोलियों से अपरिचित खड़ी बोली के अध्येता के सामने अर्थ संकट उपस्थित हो जाने का खतरा बराबर बना रहता है। वे उसके मर्म–रस और अर्थ को अच्छी प्रकार हृदयंगम न कर पाने से उपन्यास को यदि दो कौड़ी का मान बैठें तो आश्चर्य की बात नहीं होगी।

स्थानीय भाषा के वाक्य गठन का भी प्रभाव इन पर खूब पड़ा है। नये नये शब्द गढ़ने की जैसी क्रिया बोलियों में चलती है उसकी भी यहाँ कमी नहीं है। बोलचाल में तुक के साथ–साथ लोकोक्तियों का प्रयोग फिर गीतों की पंक्तियाँ और सांकेतिक शब्द प्रयोग तथा उपभाषा (स्लैग) के प्रयोग उस भाषा के जानकार को तो खड़ी बोली के ढाँचे में आँचलिकता का आनन्द दे सकते हैं लेकिन दूसरों के लिए कठिनाई का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है।

आँचलिक प्रवृत्ति वास्तव में यथार्थवादी दृष्टि से सम्बद्ध है, जो नगरीय अथवा ग्रामीण दोनों ही अंचलो की संस्कृति, वहाँ के यथार्थवादी जीवन का चित्रांकन करती है। वह आँचलिक जीवन के समग्र रूप को यथार्थवादी धरातल पर रूपायित कर सके इसके लिए उसमें लोक भाषा का व्यवहार लोक गीतों की नियोजना परम्परागत लोक कथाओं का संदर्भ आंचलिक जीवन की राजनीतिक सांस्कृतिक और सामाजिक चहल–पहल आदि बातें आँचलिक उपन्यास की शिल्पगत विशेषताओं को उद्दीप्त करने में सहायक हैं। आँचलिक व्यंजना शब्द प्रयोग और भाषा पद्धति उसके यथार्थवादी जीवन को सहज–स्वाभाविक रूप से चित्रित कर सके और पाठकों को उसके तद्वत अनुभूति कराने में सक्षम हो, ऐसे ही प्रयोगों से आँचलिक उपन्यासों में आँचलिकता का आस्वादन किया जा सकेगा।

आँचलिक उपन्यासों की शैली मूलतः दैनन्दिनी शैली अथवा रिपोर्ताज शैली है। वास्तव में हिन्दी के प्रमुख आँचलिक उपन्यास इसी शैली में लिखे गये हैं। इस शैली में किसी घटना या चरित्र का यथा तथ्य रूप में संवाद संकलन कर दिया जाता है। ''मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा' की शैली में यही रिपोर्ताज शैली ही प्रमुख है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि घटनाओं को स्वतंत्र रूप से तैयार न कर एक साथ संयोजित या संकलित कर दिया जाता है जो परस्पर सम्बद्ध होने के कारण एक उपन्यास का रूप ले लेता है। इस शैली में प्रत्येक घटना या कई घटनाओं से मिलकर अलग–अलग स्वतन्त्र रूप में विकसित होती हुयी अपने आप में पूरी होती है। जिस प्रकार किसी दैनिक पत्र में प्रकाशित किसी घटना का अपने आप में महत्व तो होता है पर उस तरह की अनेक घटनाओं के संकलन से समाचार पत्र का स्वरूप प्रकट होता है। और वह समग्र रूप में चौबीस घण्टों में समाज को प्रभावित अथवा आन्दोलित करने वाली विभिन्न स्थितियों का अभिलेख भी होता है। उसी प्रकार आँचलिक उपन्यास में अनेक घटनायें अलग–अलग संदर्भों में संयोजित होकर अंचल विशेष की सत्ता को रूपायित करने में सफल होती हैं। ऐसी शैली का एक विशिष्ट नमूना 'बहती गंगा' है। इसमें अनेक प्रकरण हैं। उनसे सम्बद्ध घटनायें भी अलग–अलग हैं। उनका रस और उद्देश्य भी स्वतंत्र है। अनेक उप शीर्षकों में विभक्त ऐसी कहानियाँ अपने आप में सर्वथा पूर्ण हैं, फिर भी अन्तरंग सम्बन्ध के कारण वे परस्पर अनस्यूत होकर बनारस की सांस्कृतिक वसीयत को चरित्र विधान के स्तर पर प्रस्तुत करने में पूरी तरह सफल हैं।

आँचलिक उपन्यास की दूसरी प्रसिद्ध शैली है – फोटोग्राफी शैली। इसमें विभिन्न मोहक चित्रों दर्शनीय स्थलों खण्ड दृष्यों, संकलित लघु चित्रों का अर्थपूर्ण संयोजन रहता है और उनका स्वरूप एक एलबम में संकलित छोटे चित्रों के समान होता है। ये सभी चित्र तथा दृश्य एक साथ मिलकर उस अंचल विशेष की संस्कृति को पूर्ण रूप से उजागर करने में समर्थ हो जाते हैं। यदि उन चित्रों को अलग–अलग कर दिया जाये तो उनका समग्र प्रभाव जाता रहेगा। फिर भी उनका अपना महत्व तो बना ही रहेगा। इसी प्रकार आँचलिक उपन्यासों में कोई उपन्यास जो फोटोग्राफी शैली में निबद्ध है एलबम के समान आँचलिक जीवन के वैविध्यपूर्ण जीवन विधान का अलग–अलग लघु चित्रांकन प्रस्तुत करता है और समग्र रूप में एक साथ उस जीवन की सम्पूर्ण प्रभावमयता को प्रस्तुत भी कर देता है।

रेणु' के उपन्यासों में सिनेमा की गरिमा की तरह अनेकानेक चित्रों को एक सूत्र में आबद्ध कर आँचलिक जीवन की गरिमा का आख्यान किया गया है। एक के बाद दूसरे दृश्य को संग्रथित करने का जो कौशल उनके उपन्यासों में प्रकट हुआ है वह सिनेमा की रील की तरह फोटोग्राफी शैली में निबद्ध चित्रों के क्रम जैसा आकस्मिक एवं अर्थपूर्ण है। 'रेणु' का 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', शैलेष मटियानी का 'हौल्दार' फोटोग्राफी शैली के सुन्दर नमूने हैं।

इस प्रकार भाषा, संवाद और शिल्प की दृष्टि से आँचलिक उपन्यासों में हुये प्रयोग आँचलिक

जीवन के यथार्थवादी स्वरूप को अभिव्यक्त करने में सफल हुये हैं। सम्वादों में आँचलिक भाषा का यथार्थवादी रूप ही ग्राह्य होता है। इस यथार्थवादी रूप को व्यक्त करने के लिये पात्रों की उच्चारण प्रक्रिया का सही–सही अनुकरण किया जाता है। लोकभाषा में तद्भवीकरण की प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है। आँचलिक उपन्यासकारों ने अपने आँचलिक पात्रों की बोलचाल के लिए इसी तद्भवीकरण की पद्धति को विशेष महत्व दिया है। इस अनुकरण से भाषा में नाद व्यंजना आ गयी है। विभिन्न ध्वनियों के तद्वत् अनुकरण से बने शब्दों का उपयोग भी बोली की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। ध्वनियों के अनुकरण पर बने शब्दों का प्रयोग 'रेणु' के उपन्यासों में इतना अधिक हुआ है कि कभी–कभी उनसे ऊब होने लगती है। किन्तु लोकभाषा की वृत्ति और शब्द गढ़ने की लोकजन प्रवृत्ति को देखते हुये इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

डायरी, रिपोर्ताज और फोटोग्राफी शैली के बावजूद हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की अन्य शैलियों भी हैं। इन उपन्यासों में शैलीगत वैविध्य दिखलायी पड़ता है। 'बलचनमा' की शैली आत्म कथात्मक है। 'मैला आँचल' की शैली फोटोग्राफिक है और 'परती परिकथा' की शैली रिपोर्ताज शैली है। कुल मिलाकर फोटोग्राफी तथा रिपोर्ताज शैली ही आँचलिक उपन्यासों की अपनी मौलिक शैली है। जो उसे अन्य कोटि के उपन्यासों से अलग कर देती है।

भाषा के स्तर पर लोकवार्ता तत्वों की सिद्धि का उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु शैली तथा व्यंजना के ढंग की दृष्टि से आँचलिकता की व्यंजना किस प्रकार होती है इसका यथेष्ट परिचय नहीं दिया जा सका है। उपर्युक्त विवरणों में आँचलिक उपन्यासों की जिन दो शैलियों – रिपोर्ताज शैली और फोटोग्राफी शैली का उल्लेख हो चुका है वह वस्तुतः लोक साहित्य शैली है। लोक–गायक कथक्कड़ और लोक–नाट्यों के अभिनेता अपनी रचनाओं की प्रस्तुति में ऐसे ही खण्ड दृश्यों के एकीकरण द्वारा समग्रता का आभास कराते हैं। इनकी शैली वर्णनात्मक होती है और भावात्मक दृष्टि से विभिन्न खण्ड–चित्रों की रचना द्वारा एक पूर्ण विषयवस्तु की अनुभूति कराने की कला उनमें सर्वत्र दिखलायी पड़ती है। लोक–गाथाओं, लोक गीतों आदि में इस प्रकार खण्ड–चित्र, खण्ड–कथानक, खण्ड भाव–धारा रहती है और अलग–अलग दृश्यों–चित्रों–भावों कथ्यों और वर्णनों द्वारा एक पूर्ण भाव या वर्णन की निष्पति अपने आप हो जाती है। लोक रचनाकार बड़ा ही मितभाषी होता है। वह गिने चुने मर्मस्पर्शी भाव हिन्दुओं तक ही अपने को सीमित रखता है। श्रोता, पाठक अथवा दर्शक क्रमशः एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु की यात्रा करता हुआ। चरम बिन्दु तक सहज ही पहुंच जाता है। क्योंकि वे भाव बिन्दु या विचार बिन्दु परस्पर अर्न्तग्रसित होते हैं। प्रमुख आँचलिक उपन्यासों में लोक रचना की यही शैली उपन्यास को एक विशिष्ट और मौलिक धरातल पर रूपायित करती है। आँचलिक उपन्यासकारों ने किसी भाव चित्र शैली का अनुभावन अपनी कृतियों में किया है।

इस प्रकार हिन्दी के ये आँचलिक उपन्यास लोक भाषा का प्रयोग, शैली, सम्वाद और कथानक के स्तर पर लोक रचना वृत्ति का अनुगमन करने के कारण सहज ही लोक–तात्विक वृत्ति से सम्पुष्ट प्रतीत होते हैं।

निष्कर्ष :

आँचलिक उपन्यासों की शैली मूलतः दैनन्दिनी शैली अथवा रिपोर्ताज शैली है। वास्तव में हिन्दी के प्रमुख आँचलिक उपन्यास इसी शैली में लिखे गये हैं। इस शैली में किसी घटना या चरित्र का यथा तथ्य रूप में संवाद संकलन कर दिया जाता है। ''मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा' की शैली में यही रिपोर्ताज शैली ही प्रमुख है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि घटनाओं को स्वतंत्र रूप से तैयार न कर एक साथ संयोजित या संकलित कर दिया जाता है जो परस्पर सम्बद्ध होने के कारण एक उपन्यास का रूप ले लेता है। इस शैली में प्रत्येक घटना या कई घटनाओं से मिलकर अलग–अलग स्वतन्त्र रूप में विकसित होती हुयी अपने आप में पूरी होती है। आँचलिक उपन्यास की दूसरी प्रसिद्ध शैली है – फोटोग्राफी शैली। इसमें विभिन्न मोहक चित्रों दर्शनीय स्थलों खण्ड दृश्यों, संकलित लघु चित्रों का अर्थपूर्ण संयोजन रहता है और उनका स्वरूप एक एलबम में संकलित छोटे चित्रों के समान होता है। ये सभी चित्र तथा दृष्य एक साथ मिलकर उस अंचल विशेष की संस्कृति को पूर्ण रूप से उजागर करने में समर्थ हो जाते हैं। यदि उन चित्रों को अलग–अलग कर दिया जाये तो उनका समग्र प्रभाव जाता रहेगा।

सन्दर्भ

1. बलचनमा : नागार्जुन : पृष्ठ सं. 13, सातवाँ संस्करण : 1981।
2. बहती गंगा : शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' : पृष्ठ सं. 50
3. बहती गंगा : शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' : पृष्ठ सं. 162
4. परती परिकथा – फणीश्वर नाथ रेणु : पृष्ठ सं. 10
5. परती परिकथा – फणीश्वर नाथ रेणु : पृष्ठ सं. 43
6. परती परिकथा – फणीश्वर नाथ रेणु : पृष्ठ सं. 124
7. हिन्दी उपन्यास (ऐतिहासिक अध्ययन) : शिवनारायण श्रीवास्तव : पृष्ठ सं. 448–450
9. परती परिकथा – फणीश्वर नाथ रेणु : पृष्ठ सं. 125
10. परती परिकथा – फणीश्वर नाथ रेणु : पृष्ठ सं. 126